भाषा की विशेषताएं

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रफफेसर, संस्कृत विभाग

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

भाषा की कुछ विशेषताएं हैं, जो सामान्य रूप से विश्व की समस्त भाषाओं में प्राप्त होती हैं। भाषा के इस स्वरूप का विवेचन ही भाषाविज्ञान का प्रमुख उद्देश्य है। प्रत्येक भाषा के अपने व्याकरण हैं। उनके नियम उसी विशेष भाषा पर लागू होते हैं। परन्तु आगे वर्णित भाषा की विशेषताएं सभी भाषाओं पर लागू होती हैं-

1. **भाषा सर्वोत्तम ज्योति है**- भाषा संसार की सर्वोत्कृष्ट ज्योति है, जो मानव के हृदय के अन्धकार को दूर करती है। यह ज्ञानज्योति ही विश्व की समस्त मानवों का कार्यकलाप सिद्ध करती है। यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि भाषा के बिना मानव की क्या दयनीय स्थिति होती। आचार्य दण्डी ने भाषा की इस प्रकाशशीलता को ध्यान में रखकर कहा है कि यदि शब्दरूपी ज्योति संसार में न जलती तो संसार में चारों ओर अन्धेरा ही अन्धेरा ही रहता-

   इदमन्धतमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम्।

   यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।।

2. **भाषा समाज को एकसूत्र में बाँधती है**- भाषा ही वह शक्ति है वह संसार को एकसूत्र में बाँध सके। भाषा समन्वय सूत्र है। ऋग्वेद में भाषा को राष्ट्री (राष्ट्रनिर्मात्री) और संगमनी (सम्बद्ध करने वाली) कहा गया है- **"अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्।"** आचार्य भर्तृहरि ने उसे विश्व-निबन्धनी कहा है।
3. **भाषा सर्वशक्तिसम्पन्न है**-भाषा विश्व की सबसे महान् शक्तिसम्पन्न वस्तु है। भाषा में वह शक्ति है कि नवीन सृष्टि की रचना कर दे। वह निष्प्राण समाज में चेतना फूँक देती है और हतप्रभ में कान्ति ला देती है। ऋग्वेद में इसको वायु के समान सर्वगामी शक्ति बताया गया है। इसे विश्व की रचना का श्रेय दिया गया है।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

4. **भाषा सर्वव्यापक है**- मानव के प्रत्येक कार्य भाषा द्वारा संचालित होते हैं। व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्ति-समाज या व्यक्ति स्वयं, सभी स्थितियों में मानव का आधार भाषा ही है। मानव का आन्तरिक और बाह्य कार्य, चिन्तन-मनन-अभिव्यञ्जन, वैयक्तिक और सामाजिक कार्यों के लिए भाषा की ही सहायता ली जाती है। आचार्य भर्तृहरि ने सभी लौकिक कार्यों का आधार भाषा को माना है। भाषा से ही ज्ञान होता है, ज्ञान से ही सभी काम होते हैं, अतः भाषा सर्वत्र अनुस्यूत है।
5. **भाषा विराट् और विश्वकर्मा है**- भाषा का स्वरूप इतना विशाल और अगाध है कि उसे ब्रह्म के तुल्य विराट्-रूप माना गया है। ज्ञान-विज्ञान का ऐसा कोई अंश नहीं है, जो भाषा में समाहित न हो। शतपथ ब्राह्मण में भाषा को विराट् कहा गया है। भाषा में सब कुछ कर सकने की शक्ति है, अतः भाषा का 'विश्वकर्मा' नाम अन्वर्थ है-

वाग्वै विश्वकर्मर्षिः। वाचा हीदं सर्वं कृतम्।

6. **भाषा का प्रवाह अविच्छिन्न है**- जिस प्रकार मानव-सृष्टि का क्रम अविच्छिन्नरूप से चल रहा है, उसी प्रकार भाषा का प्रवाह भी अविच्छिन्न रूप से मानव के साथ चल रहा है। ताण्ड्य महाब्राह्मण में भाषा की उपमा नदी की धारा से दी गई है। जिस प्रकार नदी की धारा निरन्तर प्रवाहमान रहती है, उसमें कहीं रुकावट या विच्छेद नहीं होता है, उसी प्रकार भाषा भी नित-नूतन सरस होती हुई प्रवाहित होती है। वह सदा अविच्छिन्न रहती है-

सा ऊर्ध्वोदातनोद् यथाऽपां धारा संततैवम्।

7. **भाषा परम्परागत वस्तु है**-भाषा के स्वरूप पर विचार करने से ज्ञात होता है कि भाषा परम्परागत वस्तु है। यह परम्परा से मनुष्य को प्राप्त होती है और वंश-परम्परा से अग्रसर होती हुई चली जाती है। संस्कृत भाषा सहस्त्रों वर्षों से परम्परा से चली आ रही है। इसी प्रकार भारत में हिन्दी, मराठी, बंगला, गुजराती, पंजाबी आदि परम्परा से चली आ रही है। ऋग्वेद में भाषा की इस परम्परा का कारण भी बताया गया है कि भाषा 'हृद्य' होती है।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

8. **भाषा सामाजिक वस्तु है**- जिस प्रकार मनुष्य समाज से वेष-भूषा, उठना-बैठना, खाना-पीना आदि की प्रारम्भिक शिक्षा लेता है, उसी प्रकार समाज से ही भाषा भी सीखता है। समवयस्क साथियों से उसे प्रतिदिन कुछ नये शब्द सुनने को मिलते हैं, उनका प्रयोग भी वह अपने साथियों या सम्बन्धियों से सीखता है। इस प्रकार उसकी ज्ञानराशि एवं शब्दकोश बढ़ता है। मनुष्य समाज से ही सब कुछ सीखता है। उसी प्रकार भाषा भी समाज से ही सीखी जाती है। मनुष्य को भाषा समाज की ही देन है, अतः भाषा को सामाजिक वस्तु माना गया है।
9. **भाषा मानव की अक्षयनिधि है**-भाषा मानवमात्र का अक्षयकोष है। यही मानवता की पूँजी है, मानव-समाज का चिर-संचित कोष है, जिसको लेकर भावी पीढ़ी अपना काम चलाती है। मानव ने सृष्टि के आरम्भ से आज तक जो कुछ सोचा, समझा, देखा और अनुभव किया है, उसका संकलन भाषा के रूप में विद्यमान है। यह मानवजाति का सार और सर्वस्व है, अतः इसे 'रस' कहा गया है-**"पुरुषस्य वाग् रसः"**। ऋग्वेद ने इसे अमृत की नाभि और देवों की जिह्वा कहा है- **"जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः"**।
10. **भाषा में कर्तृत्व, धर्तृत्व और हर्तृत्व**- भाषा में कर्तृत्व, धर्तृत्व और हर्तृत्व ये तीनों गुण हैं। समस्त रचनात्मक कार्य, विविध योजनाएं, शिक्षण, ज्ञान-विज्ञानविषयक सभी कार्य भाषा के माध्यम से होते हैं। भाषा ही समाज को धारण किए हुए है, एक सूत्र में बद्ध किए हुए है, अन्यथा समाज विशृंखल हो जाता। भाषा ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र तीनों का काम करती है। ऋग्वेद में वाक्-सूक्त में भाषा को ऋषि, विद्वान्, तेजस्वी बनाने वाला बताया गया है।
11. **भाषा सत् और असत् दोनों की बोधिका है**- भाषा की ही यह विशेषता है कि वह मूर्त-अमूर्त, सत्-असत, निर्वचनीय-अनिर्वचनीय, ज्ञात-अज्ञात, भाव-अभाव सभी प्रकार के अर्थों को प्रकट कर सकती है।
12. **भाषा पैतृक एवं जन्मसिद्ध नहीं है**-भाषा मनुष्य को जन्म के साथ नहीं मिलती है। शरीर के तुल्य भाषा भी उसे जन्मसिद्ध नहीं है। भाषा पैतृक परम्परा के रूप में अनायास नहीं मिलती है। भाषा

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

सीखनी पड़ती है, अर्जित की जाती है। बालक में बोलने की शक्ति होती है, परन्तु शब्द और अर्थ का सम्बन्ध समाज से अर्जित करना पड़ता है। जंगल में छोड़े बच्चे कुछ भी बोलने में असमर्थ रहते हैं।

13. **भाषा भाव-संप्रेषण का साधन है**-भाषा ही वह माध्यम है, जिसके द्वारा मनुष्य अपने भावों और विचारों को दूसरों तक पहुँचाता है। विविध संकेतों और आंगिक साधनों के द्वारा अपना अभिप्राय स्पष्ट रूप से श्रोता तक नहीं पहुँचाया जा सकता है। भाषा के द्वारा सूक्ष्मतम भावों को, अमूर्त भावों को, स्वारस्य को, आरोह-अवरोह को, सजीव भावनाओं को बोलकर या लिखित रूप में जितनी विशदता के साथ व्यक्त कर सकते हैं, अन्यथा अन्य किसी प्रकार से नहीं।
14. **भाषा अर्जित सम्पत्ति है**- मानवशरीर के साथ भाषा भी जन्म के साथ नहीं आती है। भाषा को समाज से, समीपस्थ वातावरण से, सहयोगियों एवं साथियों से सीखा जाता है। अपनी-अपनी योग्यता और प्रतिभा के अनुसार मनुष्य बाल्यकाल से भाषा को अर्जित करता है।
15. **भाषा अनुकरण और व्यवहार से अर्जित की जाती है**- भाषा सीखने की प्रक्रिया पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि शिशु समाज से ही भाषा सीखता है। बचपन में वह माता-पिता आदि के द्वारा उच्चरित शब्दों का अनुकरण करता है। यह सीखने की प्रक्रिया बाल्यकाल से लेकर जीवनभर चलती रहती है। बाल्यकाल में अनुकरण की प्रक्रिया मुख्य रहती है, बाद में लोकव्यवहार एवं शिक्षण से अर्जन की क्रिया चलती रहती है। आचार्य पाणिनि और पतञ्जलि ने लोकव्यवहार को ही भाषाज्ञान का प्रमुख साधन माना है-

लोकतोऽर्थप्रयुक्ते शब्दप्रयोगे शास्त्रेण धर्मनियमः।

16. **भाषा परिवर्तनशील है**- सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के समान भाषा भी परिवर्तित होने वाली वस्तु है। किसी देश और किसी युग की भाषा ऐसी नहीं रही जो परिवर्तित न हुई हो। अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण परिवर्तन में मात्रा का अन्तर भले ही हो, परिवर्तन का क्रम

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

अनिवार्य है। यह परिवर्तन भाषा के सभी तत्त्वों में पाया जाता है। ध्वनि, शब्द, व्याकरण, अर्थ- इनमें कोई भी अपरिवर्तित नहीं रहता।

17. **भाषा के उच्चरित रूप में पहले परिवर्तन होता है**- यद्यपि अनुकरण के साथ ही परिवर्तन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, तथापि परिवर्तन का प्रथम प्रभाव भाषा के उच्चरित रूप पर पड़ता है। व्यक्तिगत उच्चारण में अन्तर होते-होते वह समाज के उच्चरित रूप में भी परिलक्षित होने लगता है। फलतः अग्नि>अग्गि>आग हो जाता है। चतुर्वेदी>चौबे, द्विवेदी>दूबे, उपाध्याय>ओझा>झा, सत्य>सच, घृत>घी, शर्करा>शक्कर हो जाता है। उच्चरित रूप धीरे-धीरे साहित्य में प्रवेश पाकर परिष्कृत या विकसित रूप मान लिए जाते हैं।

18. **प्रत्येक भाषा की संरचना पृथक् होती है**- विश्व की प्रत्येक भाषा की संरचना पृथक् है। शब्दावली, व्याकरण, उच्चारण, शब्दरूप, धातुरूप, वाक्य-प्रयोग आदि में आकाश –पाताल का अन्तर है। इसीलिए प्रत्येक भाषा को एक स्वतन्त्र इकाई माना जाता है।

19. **भाषा की धारा कठिनता से सरलता की ओर जाती है**- जिस प्रकार जल की धारा ऊपर से नीचे की ओर जाती है, उसी प्रकार भाषा भी कठिनता से सरलता की ओर उन्मुख होती है। जनसाधारण में, मुख्यतः बालकों में, यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे कठिन शब्दों को सरल बना लेते हैं। इसका कारण यह है कि मानव की स्वाभाविक प्रवृत्ति यह है कि वह अल्प श्रम से अधिक लाभ उठाना चाहता है। वैदिक भाषा के व्याकरण के पश्चात् संस्कृत व्याकरण, पालि-व्याकरण तथा प्राकृत अपभ्रंश और हिन्दी व्याकरणों की तुलना करते हैं तो ज्ञात होता है कि वैदिक व्याकरण में जितनी विभिन्नता, रूपों का वैविध्य, क्रियापदों की अनेकता प्राप्त होती है वह शनैः शनैः न्यून होती चली गई है।

20. **भाषा संयोगावस्था से वियोगावस्था की ओर जाती है**- मूल रूप में सभी भाषाएं संयोगावस्था में थीं। उनका स्वरूप संहिति या संश्लेष प्रधान था। इनमें प्रकृति और प्रत्यय को समन्वित रूप में

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi

रखा जाता था। परन्तु भाषा के प्रवाह के साथ वियोग या विश्लेष की प्रवृत्ति बढ़ती गई और अन्त में भाषा वियोगावस्था को प्राप्त हो गई।

21. **भाषा का कोई अन्तिम स्वरूप नहीं होता है**- भाषा सतत प्रवहमान एवं गत्वर है, अतः इसका कोई एक अन्तिम स्वरूप नहीं हो सकता। विश्व की समस्त वस्तुएं परिवर्तनशील हैं, उसी प्रकार भाषा भी परिवर्तनशील है। सदा परिवर्तनशील वस्तु का अन्तिक स्वरूप नहीं होता है। न संसार का कोई अन्तिम स्वरूप है, न मानव शरीर का और न मानवीय भाषा का।

22. **भाषा सामाजिक दृष्टि से स्तरित होती है**-भाषा एक होने पर भी सामाजिक स्तर से उसमें भेद आ जाता है। सामान्यतः सभी हिन्दी बोलने वाले हिन्दी का ही प्रयोग करते हैं, किन्तु सबकी हिन्दी एक-जैसी नहीं होती। जिसका जैसा सामाजिक स्तर होता है, उसकी भाषा वैसी ही हो जाती है। यह स्तरभेद शैक्षिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं व्यावसायिक कारणों से हुआ करता है। यह स्तर-भेद सबसे अधिक शब्द भण्डार में देखा जाता है, उससे कम व्याकरण में और उससे कम ध्वनि में।

E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi